शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh Online Available at https:// www.shodhutkarsh.com ISSN-2993-4648
वर्ष - 04 अंक– 13 जनवरी - मार्च - 2026 Impact factor– 4.5

काशी का अस्सी : अस्सी के यायावर काशीनाथ सिंह

किशन सिंह बघेल
शोधार्थी, हिन्दी - विभाग
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा (म. प्र.)

कथाकार काशीनाथ सिंह का नाम समकालीन हिन्दी कथा साहित्य के उन रचनाकारों में लिया जाता है जिन्होंने आम जनभाषा, लोक जीवन तथा सामाजिक यथार्थ को अपने रचनाकर्म का केंद्र बनाया। आपका चर्चित उपन्यास काशी का अस्सी, य़ह केवल साहित्यिक कृति नहीं बल्कि जिंदगी और जिंदादिली से भरा एक अलग किस्म का उपन्यास है। जो काशीनाथ जी की पहचान भी रहा साथ ही बनारस का भी। उपन्यास काशी का अस्सी के अंशों को प्रसिद्ध नाट्य निर्देशक उषा गांगुली द्वारा रंगमंच पर भी दिखाया गया साथ ही इसी उपन्यास पर चंद्रप्रकाश द्विवेदी द्वारा फीचर फिल्म मोहल्ला अस्सी का भी निर्माण किया गया। जिसमें मुख्य भूमिका सन्नी देओल और साक्षी तन्वर ने निभाई है । यह उपन्यास अस्सी घाट और उसके आस-पास के जनजीवन तथा समाज में घटित होने वाले सामाजिकए सांस्कृतिक और राजनैतिक बदलावों को भी व्यक्त करता है।

'अस्सी के यायावर' कहे जाने वाले व्यक्ति काशीनाथ सिंह का नाम आते ही जेहन में छरू फिट लंबे, इकहरे बदन के, हँसते हुए, चश्मे के भीतर से देखती बड़ी. बड़ी लाल आँखें, धोती.कुर्ता में एक प्रभावशाली व्यक्ति का रूप सामने आता है। आप जितने गंभीर लेखक हैं उतना ही जिंदादिल इंसान भी हैं। काशीनाथ जी को प्राणों से भी ज्यादा प्रिय बनारस शहर है और इस शहर में अस्सी घाट और वहाँ की संस्कृति, जहाँ पर प्राण बसते हों, जहाँ रोज़मर्रा का जीवन बीता हो। काशीनाथ जी बनारस शहर पर लिखते हैं:-

"अखण्ड हरिकीर्तनों का शहर!
रात.रात कब्वालियों और बिरहा.दंगलों का शहर!
कन्धे पर लंगोट या लंगोट की पगड़ी बांधे सिर का शहर!
पान की दुकानों के आगे सुबह.शाम गप्पे मारता और ठहाके लगाता शहर!
गलियों और गालियों, घाटों और मालियों,
हर हर महादेव के नारों और तालियों का शहर!
प्राणों से प्यारा शहर
दुनिया में न्यारा शहर
आँखों का तारा शहर
मस्ती का मारा शहर
हाय. हाय हमारा शहर!"[1]

काशीनाथ जी यहाँ पर लिखते हैं कि 'हाय.हाय इसलिए कि य़ह शहर भी था और एक भारी.भरकम ओखल भी, जिसमें अपनी मर्जी से अपना सिर डाले हुए सारा जीवन पड़ा रहा। वह हमेशा मुझे अपने उस पिता की याद दिलाता रहा जो अपना प्यार थप्पड़ों की भाषा में व्यक्त करते थे। जितना ही अधिक प्यार, उतने ही अधिक थप्पड़।[2]

काशीनाथ जी सन् 1953 से 1980 तक, 28 वर्ष अपनी जिंदगी के सबसे क़ीमती दिन अस्सी पर व्यतीत किए। काशीनाथ जी हमेशा लोलार्क कुंड से अस्सी घाट तक पैदल आते जाते रहे हैं। प्रो. दिनेश कुशवाह जी काशीनाथ जी के संस्मरण में लिखते हैं कि "एक बार मैंने कहा कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के वरिष्ठ आचार्य और अध्यक्ष का य़ह चर्वण कुछ सज्जनों को दुराचरण लग सकता है तो गुरुदेव ने हँसते हुए कहा, मैं अध्यक्षी का चोला छोड़ सकता हूँ पर अस्सी और य़ह झोला नहीं।[3] काशीनाथ जी जब घर से बाहर निकलते और किस तरह से टहलते.टहलते अस्सी पहुचते थे जिसका जिक्र प्रो. दिनेश कुशवाह जी अपने संस्मरण में लिखते हैं गुरु घर से निकल कर लंका पर दो भुट्टे, सौ.दो सौ ग्राम मूँगफली या लाई.चना लेते। ठोंगा मेरे हाथ में पकड़ा देते। और चर्वण करते.कराते.बतियाते.गपियाते अस्सी। पूर्णाहुति अस्सी पर चाय और पान से होती।

काशीनाथ जी को अस्सी का यायावर, कहना केवल एक साहित्यिक क्रिया नहीं है बल्कि आपके पूरे रचनात्मक व्यक्तित्व का बोध कराता है। आपका उपन्यास काशी का अस्सी हिन्दी साहित्य की एक ऐसी कालजयी रचना है जो काशी के अस्सी मुहल्ले, को अंतर्राष्ट्रीय पहचान दिलाई। काशीनाथ जी अस्सी आते.जाते थे। अस्सी चौराहे पर स्थिति पप्पू चाय की दुकान, महज एक चाय की दुकान नहीं बल्कि य़ह संसद थी। यहाँ सारे लोगों का जमघट लगता था। चाहे वो लेखक हो, कवि हो, नेता हो,युवा. बुजुर्ग सबकी बातें सुनी जाती थी। काशीनाथ जी भी बैठकर बातें सुनते और यहीं से आप देख तमाशा लकड़ी का, की रचना कर डाले। जिसमें आप लिखते हैं "मित्रों य़ह संस्मरण वयस्कों के लिए है, बच्चों और बूढ़ों के लिए नहीं; और उनके लिए भी नहीं जो य़ह नहीं जानते कि अस्सी और भाषा के बीच ननद-भौजाई और साली-बहनोई का रिश्ता है! जो भाषा में गन्दगी, गाली, अश्लीलता और जाने क्या-क्या देखते हैं और जिन्हें हमारे मुहल्ले के भाषाविद 'परम' (चूतिया का पर्याय) कहते हैं, वे भी कृपया इसे पढ़कर अपना दिल न दुखाएं....।"[5] काशीनाथ जी का उपन्यास 'काशी का अस्सी' सन् 1990 से लेकर 2000 तक के समय को अपने में समेटे हुए है। पप्पू की चाय की दुकान उपन्यास का केंद्र माना जाता है। जो अस्सी और बनारस, बनारस से पूरे देश की समसामयिक यथार्थ को सामने लाता है। 'काशी का अस्सी' उस संकट की उपज है जिसमें व्यक्ति ज्यादा से ज्यादा हीन और उत्पाद एवं उपभोक्ता महत्वपूर्ण होता जा रहा है। इस उपन्यास में 'अस्सी' के साथ जो घट रहा है वह अस्सी की पीड़ा ही नहीं बल्कि पूरे भारत की है। पाँच अध्यायों में विभक्त य़ह उपन्यास अस्सी घाट और मोहल्ले से जुड़ी घटनाओं को व्यक्त करता है। उपन्यास के आरम्भ में कथाकार लिखते हैं— "शहर बनारस के दक्खिनी छोर पर गंगा किनारे बसा ऐतिहासिक मुहल्ला अस्सी। अस्सी चौराहे पर भीड़- भाड़ वाली चाय की एक दुकान। इस दुकान में रात-दिन बहसों से उलझते, लड़ते-झगड़ते गाली-गलौज करते कुछ स्वनामधन्य अखाड़िए बैठकबाज। न कभी उनकी बहसें खत्म होती हैं, न सुबह-शाम। जिन्हें आना हो आएं, जाना हो जाएं। इसी मुहल्ले और दुकान का 'लाइव शो' है यह कृति-उपन्यास का उपन्यास और कथाएँ की कथाएं। खासा चर्चित, विवादित और बदनाम। लेकिन बदनाम सिर्फ अभीजनों में, आमजनों में नहीं! आमजन और आम पाठक ही इस उपन्यास के जन्म की जमीन रहे हैं!"[6]

इस उपन्यास के मूल में बनारस और मुहल्ला अस्सी छाया हुआ है। इस शहर की पुरातन संस्कार और प्राचीन पहचान हमारी भारतीय संस्कृति के अंग रहे हैं। इस मोहल्ले के लोगों का पहनावा है "कमर में गमछा, कंधे पर लंगोट और बदन पर जनेऊ यह 'यूनिफॉर्म' है अस्सी का!" इस बाजारवाद के आ जाने से "जनेऊ और लंगोट का चाहे जो बिगाड़ा हो 'गमछा' अपनी जगह अडिग है!" यहाँ के लोगों की जो भाषा है समझिए "अस्सी और भाषा के बीच ननद-भौजाई और साली-बहनोई

का रिश्ता है।" " 'हर हर महादेव' के साथ 'भोसड़ी के' नारा इसका सार्वजनिक अभिवादन है!"[10] फर्क इतना है कि पहला बंद बोलना पड़ता है दूसरा अपने आप निकल आता है। "जमाने को लौड़े पर रखकर मस्ती से घूमने की मुद्रा 'आइडेंटिटी कार्ड' है इसका!"[11] अपनी औघड़ संस्कृति, फक्कड़ मस्ती, उच्छल, उल्लासित, खिलंदड़ ध्वनियाँ जो अस्सी की पहचान है और इस उपन्यास की जान है।

काशीनाथ जी मुहल्ला अस्सी में चाय, पान की दुकानों पर उठते – बैठते लोगों की दिनचर्या, बातचीत की शैली लोगों का ठहाका हूबहू उपन्यास के माध्यम से दिखाने का प्रयास किए हैं। जिस तरह से काशी के लोग अपने बोल चाल की भाषा में गालियों का प्रयोग करते हैं कथाकार अपनी रचना में हूबहू उतार दिए हैं। पान की दुकान पर बैठे तन्नी गुरु से एक आदमी बोला— "किस दुनिया में हो गुरु! अमरीका रोज-रोज आदमी को चंद्रमा पर भेज रहा है और तुम घण्टे भर से पान घुला रहे हो?"[12] तभी गुरु पीक थूक कर बोलते हैं— "देखौं! एक बात नोट कर लो! चंद्रमा हो या सूरज- भोसड़ी के जिसको गरज़ होगी, खुदै यहाँ आएगा। तन्नी गुरु टस-से-मस नहीं होंगे हियां से! समझे कुछ? 'जो मजा बनारस में; न पेरिस में, न फारस में' —इश्तहार है इसका।"[13] इश्तहार क्यों न हो, यदि नहीं होता तो विदेशी लोग क्यों आते? भारत में विदेशियों के आगमन के पीछे अब तक य़ह धारणा रही है कि वे हमारी सांस्कृतिक मूल्यों के आकर्षण में बंधकर आते हैं।

य़ह उस समय का अस्सी है जब बावरी मस्जिद कांड और मंडल आयोग की राजनीति से पूरा देश जल रहा था। पप्पू की दुकान के सामने बैठे वीरेन्द्र श्रीवास्तव कहते हैं "पी. एम. मण्डल आयोग में फंस गया, सी. एम. बावरी मस्जिद में और डी.एम. दोनों की व्यवस्था में — देश भोसड़ी के जहाँ-का-तहां है।"[14] देश में कमंडल की राजनीति ने इस कदर लहर पकड़ ली रामभक्तों का अयोध्या जाने का सिलसिला शुरू गया। एक ऐसे रामभक्त राधेश्याम हैं जो लोगों को ढूढ़ ढूढ़ कर गाड़ियों से अयोध्या भेज रहे हैं। राय साहब जब किसी भिखमगें या साधू को देखते, उन्हें बुलाकर कहते हैं "यहाँ क्या उखाड़ रहे हो? अयोध्या क्यों नहीं जाते? देखो? अगर रास्ते में पकड़े गए तो बढ़िया- बढ़िया पूड़ी- कचौड़ी, मिठाई-मोहन भोग मिलेगा। .... और अगर कहीं राधेश्याम की सरकार आ गयी तो जैसे स्वतंत्रता सेनानियों को पेंशन मिलती है, वैसे ही पेंशन भी मिलेगी! और अगर लाठी-गोली खाके टें बोल गए तो सरग कहीं गया नहीं है! इस अस्सी पर भोसड़ी के दांत निपोरे गली-गली घूम रहे हो!"[15]

'संतो घर में झगरा भारी' काशीनाथ जी का यह संस्मरण सन् 1998 के चुनावी माहौल और अस्सी के लोगों की क्रिया प्रतिक्रिया का ताना वाना हैं। य़ह संस्मरण उस दौर की कथा है जब राजनीति में जातियों की राजनीति एकजुटता प्रमुख बदलाव लेकर उपस्थित होती है। विडंबना यह है कि कोई जाति समूह अकेले दम पर सत्ता में नहीं आ सकता इसलिए पार्टियों के नेता अपनी जाति की मुहर लगाकर दूसरी जातियों में पैठ बनाते हैं इसलिए पार्टी अपनी जाति से भी दूसरी जाति के उम्मीदवार को खड़ा करती है। ताकि भिन्न जाति का भी लाभ मिले। इसी संस्मरण में राजकिशोर से कहते हैं "देखा डाक साहब, ये हैं जाति का नया चेहरा। मुलायम जिसे टिकट दे वो अहीर, कांसीराम जिसे टिकट दे वो चमार, नीतीश कुमार जिसे टिकट दे वो कुर्मी, ठाकुर, बाभन, बनिया, लाला चाहे जो हो कांशीराम का टिकट मिला नहीं कि चमार हुआ।"[16]

राजनीति में जाति का छद्म खेल खेला जा रहा है। वह लोगों में दिखाई भी पड़ता है। रामजी राय कहते हैं- "ई भोसड़ी के प्रचार कर रहे कि रामजी राय बसपा को बोट देंगे। अवधेश सिंघवा भी तो लड़ रहा है। हियां से, मायावती के टिकट पर। आया भी मेरे पास। संदेश भी भेजा था। भई, भाई है अपना। जाति विरादर है। नारा भी सुना होगा आपने 'पत्थर रखो छाती पर। मोहर मारो हाथी पर'।"[17] नब्बे के दशक में देश की राजनीति में जाति के साथ-साथ धर्म का प्रवेश होने लगता है। बावरी मस्जिद के ढांचे को गिराए जाने का कारण सिर्फ धर्म नहीं बल्कि धर्म के नाम पर राजनीति की रोटियां सेकी जा रहीं थी। इसे धर्म में राजनीति का प्रवेश कहें या राजनीति में धर्म का। इस घटना के बाद देश में रहने वाले लोग हिन्दू-मुस्लमान बन जाते है। आपस में एक दूसरे के कट्टर विरोधी बन जाते हैं। मन्दिर-मस्जिद के नाम पर जो वैमनस्य फैलाया गया उसका असर बनारस तथा मोहल्ला अस्सी में भी पड़ा। "ग्राहक हिन्दू होने लगे इस बीच, आलू, भिंडी करेला, टमाटर, कोहड़ा (मुहल्ले की सबसे प्यारी सब्ज़ी : पूड़ी- प्रेम के कारण) कद्दू, गोभी मुस्लमान हो गए। घाटे पर घाटे। रिश्ते में खटास आई। भाई-सलीम-अलीम छोड़ चले नईम को।"[18] 'बाभनों' का मक्का कहे जाने वाले इस मुहल्ले में सब्जियां बेचने का काम करता था नईम। इसकी सब्जियों को भी इसके धर्म से जोड़कर देखा जाने लगा था। मन्दिर-मस्जिद की लड़ाई ने जाने पहचाने ग्राहकों को बेगाना कर दिया था। फलस्वरूप भारतीय समाज छोटे छोटे समूहों में कटने लगता है।

चुनावी राजनीति की चाल चलते- चलते 'संतो, असन्तों और घोंघा वसन्तों का अस्सी' कथा में उस दौर की एक और परिघटना भूमंडलीकरण, उदारवाद और बाजारवाद का प्रवेश होता है। नब्बे के दशक में शुरू हुए आर्थिक सुधारों से सामाजिक-सांस्कृतिक बदलावों की शुरुआत हुई, जिससे लोगों की मानसिकता में कई बदलाव हुए। और य़ह बाजारवाद 'अस्सी' के लोगों के जीवन को प्रभावित करना शुरू कर दिया। काशी जो हजारों सालों की संस्कृतिक सभ्यता का केंद्र रहीं है और य़ह टूटकर कैसे बाजारवाद का शिकार बनती है य़ह कथा इस ओर संकेत करती है। उदारीकरण ने सीमाओं को लचीला बनाया विदेशी कंपनियों के सहारे पश्चिमी सभ्यता हमारे घर आकर बैठ गयी। लोगों का मन व्यवसायिक होना शुरू हो गया। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और शहरीकरण लोगों की सोच इतना बदल देगी कि यह किसी ने नहीं सोचा था। य़ह अस्सी रात दिन, राजनीति की व हसीं में उलझते, खिलंदड़पन करते, गप्पे बाजी करते, हंसी मज़ाक करते हुए गुजर रहा था, वहाँ अमेरिका ने धीरे-धीरे घुसना प्रारंभ कर दिया। विदेशी लड़के-लड़कियां यहाँ पढ़ने, रिसर्च करने, भारतीय संस्कृति को समझने आए और उसे विकृत करके चले गए। इसी संस्करण से अमेरिकीन महिला कैथरीन बनारस पर रिसर्च कर रहीं थीं। अस्सी की संसद कहें जाने वाली पप्पू के चाय की दुकान में इस विषय पर जानकारी लेने आयी है। दुकान में ब्रम्हानंद सहोदर, डॉ. गया सिंह, अशोक, शिवप्रसाद आदि लोग बैठे हैं। वह ब्रम्हानंद जी से कहती है- " बुरा न माने तो मैं कहना चाहती हूँ कि 'वाराणसी इज डाइंग' ! बनारस जिसे लोग पढ़ते, सुनते, जानते थे — मर रहा है आज।"[19] ब्रम्हानंद जी बात सुनते हैं और सिर हिलाते रहते हैं। डॉ. गया सिंह से रहा नहीं गया वे तिलमिला के बोले "घंटे भर से सिर हिला रहे हैं आप और वह कह रही है कि बनारस मर रहा है। इसी बनारस में हम भी है, आप भी और यह अस्सी भी है; इसी बनारस के लिए सात समुंदर पार से दौड़ लगा रहे हैं भोसड़ी के ये अंग्रेज; लेकिन यह कह रही है ओर आप सिर हिला रहे हैं— सिर्फ इसलिए कि पाँच सौ रुपए दिहाड़ी पर घर बैठे आपको काम चाहिए; एक ऐसा विदेशी किरायेदार चाहिए जिसकी खातिरदारी में आपका पूरा परिवार लगा रहे। यह नहीं देख रहे हैं कि यही साले मार रहे हैं बनारस को और कह रहे हैं कि मर रहा है!"[20]

उपन्यास की चौथी कहानी 'पांडे कौन कुमति तोहे लागी' बाजारवाद के मार के आगे अस्सी के लोगों के समर्पण की त्रासद गाथा है। अस्सी के लोगों की जमीन दरकती जा रही है। काशी के पंडित सबके सब बाजार और माया के जाल में उलझकर रह गए हैं। बाजारवाद की लपलपाती जीभ में एक दिन पूरा समाज गिरफ्त में आ जाता है। सन्

नब्बे के दशक में पंडित धर्मनाथ शास्त्री जी के माध्यम से पेइं गेस्ट और लाज की एक नई संस्कृति देखने को मिलती है। हजारों पर्यटक विदेशों से आकर गंगा किनारे बस्ते है। शुरुआत में इन पर्यटकों को छोटी और निचली जाति के लोग ही अपने घरों में किराये पर रखते थे, बाद में सुधरती आर्थिक स्थिति की तरफ देखकर ब्राम्हणों का भी ध्यान इस ओर जाता है। पंडित शास्त्री जी तो पेइंग गेस्ट के लिए अपने घर की शिवालय की कोठरी भी तुड़वा देते हैं। तमाम पूजा पाठ करने के बाद अब तक जो महादेव नहीं दे सके वह विदेशी लड़की मालदेन देने जा रहीं थी। पैसा यहाँ पर धर्म से भी बड़ा हो जाता है। जीवन और राजनीति के आदर्श में हरिद्वार अपना विचार रखते हैं और कहते हैं "आदर्श की चिंता की होती कृष्ण ने तो अर्जुन भी मारा जाता और भीम भी! पाण्डव साफ हो गए होते! आदर्श तो है पतिव्रता का लेकिन देखो तो सम्भोग हर किसी से! कोई ऐसी देवी हैं जिसका संबंध पति के सिवा किसी और से न रहा हो? आदर्श उच्चतम रखो लेकिन जियो निम्नतम — यही परंपरा रहीं हैं अपनी!"[21]

आज जीवन में सफ़ल- असफल होने का मतलब यही है जो बाजार ने बताया। देखा जाय तो तिकड़म भिड़ाकर अपने आप को आर्थिक दृष्टि में सफ़ल बनाना कोई गलत बात नहीं। घाट पर बैठा पंडित भी यही काम अपने जजमान के साथ करता आया है।

उपन्यास की अंतिम कहानी 'कौन ठगवा नगरिया लूटल हो' है। अस्सी से ठहाका, मस्ती, हुल्लड़बाजी, याराना सब गायब हो गया। अब काशी का 'अस्सी' तुलसी नगर हो गया है। उपभोक्तावादी बाजारू संस्कृति ने सबको सीमित कर दिया है, सीमित ही नहीं किया चेहरे की दिल खोल हँसी को उड़ा ले गयी। लेखक ने अस्सी चौराहे में हो रहे बिरहा दंगल के माध्यम से उन सभी बातों को सामने रखा है, जो आज की सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक समस्याएं उनका हिस्सा होती हैं। इस बिरहा पार्टी में एक ओर हीरालाल एंड पार्टी और दूसरी तरफ बुल्लू एंड पार्टी है। ये बिरहा गाकर अस्सी के वर्तमान स्थितियों से अवगत कराते हैं। अस्सी के बारे में बिरहे बताते हैं- "हम तो जैसे रहते थे, रहेंगे, हँसते थे हंसेंगे, ठहाके लगाएंगे, मस्ती मारेंगे, नाचेंगे- गाएंगे-बजायेंगे किस साले की मजाल है जो रोके।"[22] इक्कीसवी सदी के आगमन के पहले उदारीकरण, निजीकरण, भूमंडलीकरण जैसी चीजें आई। विदेशी मल्टीनैशनल कम्पनियों का आगमन होता है। सूचना एवं संचार क्रांति ने दुनिया में ऐसी तेजी उत्पन्न कर दी किसी के पास फालतू समय नहीं बचा। समय के साथ सब भागे जा रहे हैं। जिसमें अस्सी भी अछूता नहीं रहा है। भारतीय जन जीवन में टी.वी जिंदगी के एक बड़े हिस्से को घेर लिया। ग़ह बाजारवाद की देन है कि लोग रिश्तों से ज्यादा वस्तुओं को महत्व देने लगे। भूमंडलीकरण के कारण बाजार का स्वरूप ही नहीं बदला बल्कि सामुहिकता की भावना भी नष्ट हो गयी। रिश्तों का अर्थ भी बदल गया। देश की संस्कृति और सभ्यता पर इसका व्यापक प्रभाव देखने को मिलता है।

****

संदर्भ सूची :—

1.सिंह,काशीनाथ. अपने बारे में / कासी पर कहन, सं. मनीष दुबे, इलाहाबाद : मीरा पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण : 2000, पृष्ट- 22-23।
2.वहीं, पृष्ट- 23।
3.कुशवाह, दिनेश. मीर के दीनों मजहब को अब पूछते क्या हो उनने तो.. / कासी पर कहन, सं. मनीष दुबे, इलाहाबाद : मीरा पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण : 2000, पृष्ट- 50।
4.वहीं, पृष्ट- 50।
5.सिंह, काशीनाथ. देख तमाशा लकड़ी का / काशी का अस्सी, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, बीसवां संस्करण : 2024, पृष्ट- 11।
6.वहीं, पृष्ट- 7।
7.वहीं, पृष्ट- 11।
8.वहीं, पृष्ट- 11।
9.वहीं, पृष्ट- 11।
10.वहीं, पृष्ट- 11।
11.वहीं, पृष्ट- 11।
12.वहीं, पृष्ट- 11।
13.वहीं, पृष्ट- 11-12।
14.वहीं, पृष्ट- 23।
15.वहीं, पृष्ट- 28-29।
16.वहीं, पृष्ट- 40।
17.वहीं, पृष्ट- 46।
18.वहीं, पृष्ट- 49।
19.वहीं, पृष्ट- 110।
20.वहीं, पृष्ट- 111।
21.वहीं, पृष्ट- 34।
22.वहीं, पृष्ट- 147।